एषणा समिति

श्री सौभाग्यमल जैन

संयम में प्रवृत्ति हेतु आगम में पाँच समितियों का प्रतिपादन हुआ है। इनमें एषणा समिति तीसरी समिति है। आहार, जल आदि की निर्दोष रूप से प्राप्ति एवं समतापूर्वक उनका उपभोग या परिभोग एषणा समिति का प्रतिपाद्य है। गवेषणा, ग्रहणैषणा एवं परिभोगैषणा के रूप में इसके मुख्यतः तीन भेद हैं, जिनमें 47 दोषों को टालकर आहार, जल, औषधि, वस्त्र, मकान, उपधि आदि का श्रमण-श्रमणियों द्वारा संयम-रक्षार्थ सेवन किया जाता है। लेखक ने एषणा समिति के सभी पक्षों की आलेख में चर्चा की है। -सम्पादक

अगाध करुणासिंधु, जगत कल्याणक परमोपकारी, विश्ववंद्य, चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने अपनी भव भय हारिणी, दुःख विनाशिनी अमृतोपम वागरणा में "दुविहे चरित्तधम्मे- अगारचरित्तधम्मे, अणगारचरित्तधम्मे चेव।" के भाव फरमाते हुए अगार और अणगार धर्म का निरूपण किया।

इस द्विविध चारित्र धर्म में (1) अगार धर्म के अन्तर्गत चतुर्विध संघ के उन साधकों का समावेश हुआ जो श्रावक-श्राविका के नाम से अभिहित हुए। यह वर्ग सद्गृहस्थ का जीवन यापन करने के साथ तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्ररूपित 5 अणुव्रतों, 3 गुणव्रतों और 4 शिक्षाव्रतों का पालन, तीन मनोरथ व चौदह नियमों का चिन्तन आदि करते हुए जीवन-पथ को प्रशस्त एवं आत्म-साधना में विकासोन्मुखी बनाता है। इसके लिए देशतः पाप-प्रवृत्तियों से विरत रहने, धन-जन-कुटुम्ब-वैभव को बड़ा न मानकर धर्म एवं चारित्र को बड़ा मानने की व्यवस्था की गई है। (2) चारित्र धर्म का दूसरा रूप अणगार धर्म के नाम से विश्रुत हुआ। इसके अन्तर्गत पंच महाव्रतधारी, ज्ञान-धन-साधक, महान् चारित्रात्माओं को स्थान दिया गया। इस चारित्र धर्म के आराधक, श्रमण-श्रमणी वर्ग के लिए 5 महाव्रत मूलगुण रूप एवं 5 समिति + 3 गुप्ति=8 गुण उत्तरगुण रूप का विधान किया गया। ये सर्वथा हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील सेवन एवं परिग्रह से परे हटकर इन्द्रिय दमन, कषायों का वमन, मन का समन और आत्मा का दमन रूप साधना में अहर्निश निरत रहते हैं।

चतुर्विध संघ में साधु-साध्वी वर्ग का स्थान सर्वोपरि है। वे तीन करण और तीन योग से सम्पूर्ण पापों के त्याग की प्रतिज्ञा धारण करते हैं। वे दैनिक-क्रिया कलापों के साथ साधना विषयक गतिविधियों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म पापप्रवृत्ति युक्त क्रियाओं से अपनी आत्मा को विरत बनाते हुए पूर्ण निर्दोष धार्मिक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्तियों को साधक जीवन में अपनाते हैं। स्वयं धर्माचरण में लीन रहते हुए, अन्य भावी आत्माओं को भी आत्मोत्थान की प्रेरणा कर जीवन को सार्थक बनाने हेतु सत्पुरुषार्थ करते हैं। वे सतत जागरूक रहते हैं कि आत्मा कषाय-भावों, योग की दुष्प्रवृत्तियों अथवा प्रमादवश शुभ अध्यवसायों से हटकर अशुभ की ओर प्रवृत्त न हो जाये।

साधक आत्मा को शरीर विषयक दैनिक एवं कई आवश्यक कृत्य संपादित करने होते हैं, फलस्वरूप किन्हीं भी कारणों से आत्मा पाप-कार्यों की ओर प्रवृत्त हो अशुभ कर्मों का बंध कर लेती है। इस कारण वीतराग भगवंतों ने महान् चारित्र आत्माओं का संयमी जीवन ऐसा बताया है जो किन्हीं दोषों को लगाये बिना शुभ अध्यवसायों की उपस्थिति में अशुभ कर्मों की निर्जरा एवं शुभ कर्मों का उपार्जन कर अंततोगत्वा सभी शुभाशुभ कर्मों से मुक्त होकर निर्बाध गति से चरम एवं परम लक्ष्य की प्राप्ति में सक्षम बन सके एवं प्राप्त जीवन को सार्थकता प्रदान कर सके। यही परम उपकार की भावना वीतराग भगवंतों की साधक आत्माओं के प्रति रही है। अतः इन्हीं शुभ भावनाओं का मूर्त रूप हमें आगम-शास्त्रों का अनुशीलन करने पर दृग्गोचर होता है।

साधक आत्माएँ (साधु-साध्वी) अपने संयमी-जीवन को निष्पाप-निर्दोष रूप में किस प्रकार संरक्षित सुरक्षित रखते हुए आत्म-लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकें, इस हेतु वीतराग भगवंतों ने विशेष रूप में जिनका शासन प्रवर्तमान है, ने अपनी जन-कल्याण कारिणी वागरणा में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति रूप नियमों, मर्यादाओं का कथन किया- जिसके आलोक में साधक आत्माएँ शुभ की ओर प्रवृत्ति तथा अशुभ से निवृत्ति (दूर हटना) करते हुए अपनी आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाने में सक्षम होती हैं। आगमवाणी में वर्णित प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप नियम-उपनियम समिति-गुप्ति के नाम से आख्यायित हैं- जिन्हें अपरनाम अष्ट प्रवचन माता के नाम से भी जाना जाता है। प्रतिपाद्य विषय की पूर्णता एवं पुष्टि हेतु तद्विषयक संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रासंगिक है।

पाँच समिति और तीन गुप्ति की मर्यादा का पालक साधक समितियों का पालन करता हुआ शीघ्र पूर्व संचित कर्मों को निर्जरित कर उन कर्मों को क्षय करता है तथा गुप्ति के द्वारा नवीन आगन्तुक कर्मों का निरोध करता हुआ आत्मा को कर्म-रज रहित कर आत्मा को ऊर्ध्वगति की ओर अग्रसर करने में समर्थ बन जाता है।

समिति-गुप्ति का दूसरा नाम- 'अष्ट प्रवचन माता' के रूप में आगमों में उपलब्ध है जो पूर्ण रूपेण सार्थकता के साथ यथार्थता भी लिए हुए है। द्रव्य माता जिस प्रकार अपने बालक की देखभाल, पालन-पोषण, संरक्षण-संवर्धन करती हुई उसका सुखद, समुज्ज्वल व मंगलमय जीवन बनाने में योगदान करती है। उसी प्रकार मातृ-स्वरूपा, प्रभु महावीर स्वामी प्रणीत द्वादशांगी- प्रवचन रूप ये आठ भाव माताएँ भी साधक के संयमी-जीवन के उत्थान में अपनी अहम् भूमिका का निर्वहन करती हैं। वस्तुतः ये अष्ट कल्याणकारिणी भाव माताएँ ही साधु-साध्वियों के संयमी-जीवन का सर्वथा पोषण करने वाली हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इनका स्वरूप अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवंतों के श्रीमुख से निसृत अर्थ रूप प्रवचनों एवं ज्ञानी गणधरों द्वारा सूत्र रूप में ग्रथित आगम-शास्त्रों में इनका विशद उल्लेख उपलब्ध है। पश्चाद्वर्ती निर्युक्तिकार, भाष्यकार व टीकाकार, ज्ञानगुण सम्पन्न पूज्य आचार्य भगवन्तों ने अपनी बहु आयामी व्याख्याओं/ रचनाओं में इनका महत्त्व प्रतिपादित करते हुए सारगर्भित विस्तृत प्रतिपादन किया है- जो मूल आगमों के संदर्भ में मौलिकता लिए हुए साधक समुदाय के उत्थान मार्ग को आलोकित करता है। परिचयात्मक दृष्टि से यहाँ 'समिति-गुप्ति' या 'अष्ट प्रवचन-माता' का स्वरूप व उपयोगिता का संक्षिप्त विवेचन आगमिक संदर्भों से कराया जाना संगत प्रतीत होता है। चरम तीर्थंकर भगवान महावीर की अंतिम देशना, उत्तराध्ययन सूत्र का चौबीसवाँ अध्ययन सम्पूर्ण रूप से इसी विषय के भावों को अंतर्निहित किये हुए है। नाम-परिचय, भेद-प्रभेद एवं महत्त्व का प्रतिपादन अतिविशिष्टता युक्त होने से उल्लेखनीय है। उक्त अध्ययन की गाथा प्रथम एवं द्वितीय में उनका नामोल्लेख कर शेष 25 गाथाओं में भेद-प्रभेद आदि का विस्तार से वर्णन दिया हुआ है। इस अध्ययन की प्रथम गाथा के प्रथम चरण में 'अट्ठपवयण' गाथाओं के उल्लेख कर- इसे 'अष्ट प्रवचन माता' के नाम से नामांकित किया है। वहीं इसी गाथा के द्वितीय चरण में 'समिई गुत्ति' के नाम का भी कथन उपलब्ध होता है। विवेचनकार महापुरुषों ने जिनेश्वर द्वारा कथित द्वादशांग प्रवचन का सार इसी में समाविष्ट माना है। आत्मा की प्रवृत्ति, गुप्तियों में भी निहित है अतः गाथा 3 के प्रथम चरण में 'एयाओ अट्ठ समिइओ' का उल्लेख कर गुप्तियों का भी इन्हीं में ग्रहण करते हुए 'आठ समितियाँ' भी मान्य की है। इस कारण यहाँ 'समिति' का महत्त्व व्यापक स्तर पर होने से उसी के अनुरूप चिंतन व लेखन करना इष्ट प्रतीत होता है।

ज्ञातपुत्र प्रभु महावीर ने अपनी वागरणा, साररूप संक्षिप्त विधि में अर्थ रूप वागरित की, जिसे गणधरों ने उसे सूत्र रूप में निबद्ध कर भव्यजनों के कल्याणार्थ संघ को समर्पित किया। पूर्वधारी एवं पश्चात् वर्ती आचार्यों ने गृहीत गहन-गंभीर ज्ञान के आधार पर मूल भावनाओं (हार्द) को यथावत् सुरक्षित रखते हुए उन पर तत्कालीन प्रचलित मान्य जनभाषा में भाष्य-टीकाएँ लिखकर उन्हें सर्वजनोपयोगी बनाने की कृपा की।

उत्तराध्ययन सूत्र के 'समिइओ चउवीसइमं अज्झयणं' में केवल समिति-गुप्ति का ही अधिकार चलता है। अनेक अधिकारी विद्वान् महापुरुषों ने इस पर अपनी टीकाएँ लिखी हैं, जिसकी सम्पूर्ण विषय सामग्री का सार समरूपता लिये हुए है। सार-संक्षेप इस प्रकार है-

इस अध्ययन में साधु द्वारा अष्ट प्रवचन माता के पालन के विषय में विधि-विधान का निरूपण किया गया है। संयमी साधकों के जीवन-रक्षण के लिए समिति-गुप्ति का पालन अवश्य करणीय है। इनका पालन संयमी-जीवन को सुरक्षित ही नहीं रखता, प्रत्युत उसका संरक्षण और संवर्द्धन भी करता है। इनका यथा विधिपालन कर्त्ता साधक चतुर्गति रूप संसार-परिभ्रमण से सर्वथा मुक्त हो मोक्ष को प्राप्त हो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है।

समवायांग सूत्र का द्वादशांगी में चतुर्थ स्थान है। जिसका आगमिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व है। इसमें भी समिति-गुप्ति रूप अष्ट-प्रवचन माता का अधिकार उपलब्ध होता है। इस अंगशास्त्र के पाँचवें समवाय के सातवें सूत्र में ''पंच समिईओ पण्णत्ताओ तं जहा.....'' का कथन कर उसके भेदों का भी नामोल्लेख किया है। इसी अंगशास्त्र के आठवें समवाय के सूत्र दो में ''अट्ठ पवयण मायाओ पण्णत्ताओ तं जहा.....'' के माध्यम से विश्वबंधु प्रभु महावीर ने अष्ट प्रवचन माता को साधक आत्माओं के संयम पालन में आवश्यक निरूपित किया है।

उपर्युक्त विवेचित भावों पर आधारित निष्कर्ष रूप में प्राप्त होने वाले अर्थ को निम्नाङ्कित बिन्दुओं में रखा जा सकता है-

1. सम्यक् प्रकार से क्रिया करने का नाम समिति है।
2. समिति से अभिप्राय है- उचित, शुभ एवं शुद्ध में प्रवृत्ति- दूसरे शब्दों में एकाग्र परिणाम पूर्वक की जाने वाली आगमोक्त सम्यक् प्रवृत्ति।
3. समिति का अर्थ सम्यक् प्रवृत्ति है। सम्यक् और असम्यक् का मापदण्ड है अहिंसा। इस कारण अहिंसा मूलक प्रवृत्ति या आचार को समिति कहा है- जिसकी फलश्रुति मोक्ष है।

साधक की साधना के निर्दोष निर्वहन में समिति का स्थान सर्वोपरि एवं महत्त्वपूर्ण है। इनकी संख्या पाँच हैं, जिन्हें समिति के पाँच भेदों के रूप में दर्शाया गया है। विस्तार भय से मात्र उक्त भेदों का नामोल्लेख ही निम्नानुसार किया जा रहा है।

समिति के भेदः-

1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति
4. आदान भण्डमत्त निक्षेपण समिति और
5. उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल परिस्थापनिका समिति

ये उपर्युक्त 5 भेद समिति के हैं। उल्लिखित 5 भेदों में से हमें प्रतिपाद्य विषय की पूर्णता की दृष्टि से समिति का तृतीय भेद 'एषणा समिति' का सांगोपांग विवेचन अभीष्ट है।

एषणा समिति

अर्थ एवं परिभाषा- एषणा समिति क्या है? इस सम्बन्ध में सभी व्याख्याकारों के मूलभाव पूर्णरूप में एकरूपता लिये हुए हैं। किसी भी दृष्टि से विरोधाभास की स्थिति परिलक्षित नहीं होती है। जैसा कि अग्रांकित कतिपय महापुरुषों द्वारा अभिव्यक्त आगम आधारित भावों से सिद्ध होता है-

1. उत्तराध्ययन सूत्र की टीकाओं के आधार परः-

(1) शुद्ध एषणीय बयालीस दोष टालकर आहार पानी ग्रहण करना एषणा समिति है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(2) जीवन-निर्वाह हेतु आवश्यक वस्त्र, पात्र, शय्या एवं आहार को ग्रहण करते हुए यतना व अहिंसा का विवेक रखना, बयालीस दोष टालकर लेना और सैंतालीस दोष टालकर उपभोग करना एषणा समिति कहलाती है।

(3) पदार्थों को देखने, ग्रहण करने एवं उपभोग करने में शास्त्रीय विधि के अनुसार निर्दोषता का विचार करके सम्यक् प्रवृत्ति करना ही एषणा समिति है।

2. समवायांग सूत्र में वागरित प्रवचन के आधार पर:-

(1) समवायांग सूत्र के पाँचवें समवाय की टीका के अनुसार ''निर्दोष आहार की गवेषणा करना एषणा समिति कहलाती है।''

(2) समवायांग सूत्र के आठवें समवाय की टीकानुसार भी ऊपर लिखे गये भाव ही वर्णित हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त अर्थ और परिभाषाओं के परिप्रेक्ष्य में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि-'' आहार, उपधि, और शय्या की गवेषणा , ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा (ग्रासैषणा)-उक्त तीनों की तीन-तीन एषणाएँ हैं, उनकी विशुद्धि का अर्थात् उन तीनों सम्बन्धी दोषों से अदूषित, विशुद्ध आहार-पानी, रजोहरण, मुख वस्त्रिका आदि उपधि तथा शय्या के अन्तर्गत स्थान, पाट-पाटला आदि का ग्रहण करना ही एषणा समिति है।

'एषणा' शब्द संस्कृत भाषा में'एष्' धातु में युच् प्रत्यय लगकर निर्मित है। जिसका अर्थ हिन्दी, उर्दू भाषा में - इच्छा, अन्वेषण, छानबीन, खोज, तलाश, गमन, अभिलाषा के रूप में शब्द कोष में उपलब्ध होता है। यहाँ यह शब्द जैन वाङ्मय का परिभाषिक शब्द है जो साधक की भिक्षाचरी आदि के संदर्भ में तीर्थंकर भगवंत ने अपने मुखारविन्द से निसृत वाग्धारा तत्कालीन लोकभाषा में व्यवहृत किया है, जो गोचरी ग्रहण करने से पूर्व, ग्रहण करते समय और उसका उपभोग करते समय के नियमों के मूल शब्दों के साथ जुड़ा हुआ है।

साधक आत्माओं को संयमी-जीवन चलाने हेतु आहारादि की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता-पूर्ति निर्दोषता पूर्वक प्राप्त आहारादि से हो, यह साधु-साध्वी के लिए अनिवार्य है। आचारांग सूत्र अध्ययन 2, उद्देशक 5 में आहार परिज्ञा का अधिकार चलता है। उत्तराध्ययन सूत्र, अध्ययन 2 की गाथा 28 के अनुसार साधु 'परदत्त भोई' है। उन्हें आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु याचना करके ही लेनी पड़ती है। इसके लिए वे सारे नियम एवं विधि-विधान आगम-शास्त्रों में अंकित एवं वर्णित किये गये हैं, जिनकी संयमी जीवन के लिए आवश्यकता होती है। उल्लिखित विधि-विधान अत्यंत निर्दोष हैं, जिनकी अनुपालना करने पर साधक को किंचित् मात्र भी दोष नहीं लगता।

एषणा समिति साधु-साध्वी की मार्ग-दर्शिका रूप है। वह वस्तु की याचना करने और उसे उपभोग में लाने की निर्दोष रीति बतलाती है। शरीर-विज्ञान के अनुसार शरीर में जठराग्नि रही हुई है। उसकी शान्ति हेतु आहार-पानी ग्रहण करना ही पड़ता है। इस अग्नि का क्षुधा वेदनीय कर्म से सीधा सम्बन्ध है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर में समता, शान्ति और ज्ञान-ध्यान की प्रवृत्ति निर्बाध गति से चलती रहे, इसके लिए भोजन-पानी की आवश्यकता होती है। वैसे तो यह क्षुधाग्नि समस्त संसारी प्राणियों के साथ जुड़ी हुई है, और सभी जीव आहार-प्राप्ति के लिए अपने-अपने स्तर पर, अपने ढंग से प्रयास करते हैं। किन्तु जैन साधु-साध्वी 'येन-केन प्रकारेण' आहार-पानी प्राप्त कर उस अग्नि को शान्त नहीं करते, अपितु वे वीतराग भगवंतों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार क्षुधा-शान्ति का प्रयास करते हैं।

आहार-प्राप्ति की निर्दोष विधि का उल्लेख दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन में बहुत ही सुन्दर ढंग से उपलब्ध होता है जिससे 'मधुकरी' और 'गोचरी' के नाम से सम्पूर्ण जैन जगत भली प्रकार से परिचित है। यह विधि इतनी निर्दोष होती है कि श्रमण संख्या कितनी भी हो, पर वे साधु-साध्वी, किसी पर भी भार नहीं होते, और उनके खाने-पीने का खर्च भी किसी के लिए असह्य और कष्टप्रद नहीं होता। उपर्युक्त नियम एवं प्रक्रिया साधक के लिए आहार-पानी तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत इनके अतिरिक्त साधु-जीवन में कल्पनीय वस्तुओं जैसे वस्त्र, पात्र, शय्या, पाट-पाटला आदि की पूर्ति के लिए भी अनिवार्यतः पालनीय होते हैं, और वे सब वस्तुएँ गृहस्थों के घरों से याचनापूर्वक ही प्राप्त की जाती हैं।

एषणा समिति का अर्थ-परिभाषा-स्वरूप-महत्त्व एवं उपयोगिता आदि के विवेचन के पश्चात् एषणा समिति के प्रकार अर्थात् भेदों की विस्तार से जानकारी अपेक्षित है, क्योंकि दोषों की जानकारी होने पर ही उनसे बचाव करना संभव हो सकता है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 24 की गाथा संख्या 11 के प्रथम एवं द्वितीय चरण में एषणा समिति के तीन प्रकार अथवा तीन भेदों का उल्लेख है, यथा-

"गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहिसेज्जाए, एए तिण्णि विसोहए॥"

अर्थात् (1) गवेषणा, (2) ग्रहणैषणा और (3) परिभोगैषणा। इन तीनों प्रकार की एषणा का पालन तभी माना जा सकता है जबकि इनसे लगने वाले दोषों को टाला जाय। अतः इनमें से प्रत्येक का संक्षेप में विवचेन एवं विशुद्धि का परिचय निम्न प्रकार से अंकित किया जा रहा है।

(1) गवेषणा - 'गवेषणा' का प्रचलित भाषा में शाब्दिक अर्थ 'खोज करना' होता है। अतः गवेषणा का आगमिक भाषा में व्यावहारिक अर्थ है, साधु-साध्वी द्वारा शुद्ध आहारादि की खोज करना। खोजने पर ही इच्छित वस्तु की प्राप्ति संभव है, कहावत भी है-"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।" साधक की साधना में आहार, पानादि का विशेष महत्त्व रहा है, जैसा कि लोकोक्ति प्रसिद्ध है- "जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। जैसा पीवे पाणी, वैसी बोले वाणी।" ये पंक्तियाँ आहारादि की शुद्धता का महत्त्व प्रतिपादित कर रही है। साधना की सफलता को भोजन की शुद्धता प्रभावित करती है। इसीलिए भगवान ने साधु-साध्वी द्वारा गोचरी हेतु पधारते समय, गोचरी ग्रहण करने से पूर्व ध्यान रखने योग्य निर्देश फरमाये हैं- जिनकी संख्या 16 है। ये उद्गम के दोष कहलाते हैं। ये दोष गोचरी बहराने वाले दाता

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को लगते हैं। अतः साधु-साध्वी के साथ सद्गृहस्थ को भी इन नियमों की जानकारी होना परमावश्यक है, अन्यथा सुपात्र को दान दिये जाने पर भी दायक अशुभ कर्मों के बंध का भागी बन सकता है। यहाँ साधु का भी दायित्व बनता है कि उसको आहार देने के निमित्त से 'दाता' कर्म-निर्जरा के स्थान पर कर्म-बंध का भागी न बने। इस कारण उद्गम के सोलह दोषों को टालकर उपयोग की वस्तु ग्रहण करे। सभी दोष आगमोक्त हैं- जिनके नामोल्लेख के साथ अर्थ मूलक संक्षिप्त परिचय और कोष्ठक में आगम का अति लघुरूप में नाम व तत्सम्बन्धी अन्य संकेतों का लेखन किया गया है। गवेषणा के अंतर्गत 16 दोष उद्गम के, 16 दोष उत्पादन के कुल 32 दोष निम्नांकित हैं।

उद्गम के 16 दोषः-

1. **आधा कर्मः**- किसी साधु के निमित्त से आहारादि बनाकर देना (आचारांग 2.1.2 तथा दशा.2)।
2. **औद्देशिकः**- जिस साधु के लिए आहार बना हो, उसे दूसरा साधु ग्रहण करे। (दशवै.5.1.55 तथा आचारांग सूत्र 2.1.1)
3. **पूति कर्मः**- शुद्ध आहार में आधाकर्मी आहार का कुछ अंश मिला होना। (दशवै.5.1.55 तथा सूत्रकृ.1.1.3.1)
4. **मिश्रजातः**- अपने और साधुओं के लिए बनाया आहार (प्र.व्या.2.5, भग. 9.33)
5. **स्थापनाः**- साधु को देने के लिए अलग रख छोड़ना (प्र.व्या. 2.5)
6. **पाहुडियाः**- साधु को अच्छा आहार देने के लिए समय को आगे-पीछे करना (प्र.व्या.2.5)
7. **प्रादुष्करणः**- अँधेरे में रखी चीज को प्रकाश में लाकर देना (प्र.व्या.2.5)
8. **क्रीतः**- साधु के लिए खरीद कर देना (दशवै. 5.1.55, आचा. 2.1.1)
9. **प्रामीत्यः**- उधार लेकर साधु को देना (दशवै. 5.1.55, आचारां. 2.1.1)
10. **परिवर्तितः**- साधु के लिए अदल-बदल करके ली हुई वस्तु देना (निशीथ 14.18.19)
11. **अभिहतः**- साधु के लिए वस्तु को सामने ले जाकर देना (दशवै. 3.2, आचा. 2.1.1)
12. **उद्भिन्नः**- बंद या लेप लगी बंद वस्तु को साधु के लिए खोलकर देना (दशवै. 5.1.45, आचा.2.1.7)
13. **मालापहृतः**- ऊँचे-नीचे, तिरछे स्थान जहाँ से सरलता से वस्तु न ली जा सके। (दशवै. 5.1.67, आचा.2.1.7)
14. **अच्छेद्यः**- निर्बल या अधीनस्थ से छीन कर देना (आचा. 2.1.1, दशा.2)
15. **अनिसृष्टः**- भागीदारी की वस्तु बिना भागीदार के पूछे देना (दशवै. 5.1.37)
16. **अध्यवपूरकः**- साधुओं का आगमन सुन बनते भोजन में कुछ सामग्री बढ़ाना (दशवै. 5.1.55)

उद्गम के ये सोलह दोष, गृहस्थ दाता से लगते हैं- श्रमण का कर्त्तव्य है कि वह गवेषणा करते

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समय उपर्युक्त दोषों को नहीं लगने देने का ध्यान रखे।

उत्पादन के 16 दोषः-

निम्नलिखित सोलह दोष साधु के द्वारा लगाये जाते हैं। ये दोष निशीथ सूत्र के 13 वें उद्देशक में लिखे हैं, और कुछ अन्यत्र भी कहीं-कहीं मिलते हैं।

1. **धात्री कर्म-** बच्चे की सार सँभाल करके आहार प्राप्त करना।
2. **दूति कर्म-** एक का सन्देश दूसरे को पहुँचा कर आहार लेना।
3. **निमित्त-** भूत, भविष्य और वर्तमान के शुभाशुभ निमित्त बताकर आहार लेना।
4. **आजीव-** अपनी जाति अथवा कुल आदि बताकर लेना।
5. **वनीपक-** दीनता प्रकट करके लेना।
6. **चिकित्सा-** औषधि देकर अथवा बताकर लेना।
7. **क्रोध-** क्रोध कर अथवा शाप का भय दिखाकर लेना।
8. **मान-** अभिमान पूर्वक अपना प्रभाव बताकर लेना।
9. **माया-** कपट का सेवन अथवा वंचना करके लेना।
10. **लोभ-** लोलुपता से अच्छी वस्तु अधिक लेना।
11. **पूर्व-पश्चात् संस्तव-** आहार लेने के पूर्व एवं बाद में दाता की प्रशंसा करना।
12. **विद्या-** चमत्कारिक विद्या का प्रयोग अथवा विद्यादेवी की साधना के प्रयोग से वस्तु प्राप्त करना।
13. **मन्त्र-** मंत्र प्रयोग से आश्चर्य उत्पन्न करके लेना।
14. **चूर्ण-** चमत्कारिक चूर्ण का प्रयोग करके लेना।
15. **योग-** योग का चमत्कार अथवा सिद्धियां बताकर लेना।
16. **मलकर्म-** गर्भ स्तंभन, गर्भाधान, गर्भपात जैसी पापकारी औषधि बताकर लेना। (प्र.व्या. 1.2 तथा 2.1)

ये सोलह दोष साधु से लगते हैं। ऐसे दोषों के सेवन करने वाले का संयम सुरक्षित नहीं रहता। सुसाधु इन दोषों से दूर ही रहते हैं। उद्गम और उत्पादन के कुल बत्तीस दोषों का समावेश 'गवेषणा' में होता है।

(2) ग्रहणैषणा- ग्रहणैषणा का अर्थ निर्दोष आहारादि ग्रहण करना है। इसके अन्तर्गत साधक को अपने जीवन-निर्वाह हेतु आवश्यक वस्त्र, पात्र, शय्या एवं आहार-पानी को ग्रहण करते हुए यतना एवं अहिंसा का विवेक रखना होता है। निम्नांकित दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों में लगते हैं- ये 'ग्रहणैषणा' के दोष हैं। इन दोषों को टालकर साधु वस्तु ग्रहण करें।

1. **शंकित-** दोष की शंका होने पर लेना (दशवै. 5.1.44, आचा. 2.10.2)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. **म्रक्षित-** देते समय हाथ, आहार या भाजन का सचित्त पानी से युक्त होना (दशवै. 5.1.33)
3. **निक्षिप्त-** सचित्त वस्तु पर रखी हुई अचित्त वस्तु देना (दशवै. 5.1.30)
4. **पिहित-** सचित्त वस्तु से ढँकी हुई अचित्त वस्तु देना (उपासक. 1)
5. **साहरिय-** जिस पात्र में दूषित वस्तु पड़ी हो, उसे अलग कर उसी बरतन से देना (दशवै. 5.1.30)
6. **दायग-** अशुद्ध व अयोग्य दायक बालक, अंधे, गर्भवती आदि के हाथ से लेना (दशवै. 5.1.40)
7. **उन्मिश्र-** कुछ कच्चा कुछ पका, सचित्त-अचित्त मिश्रित आहार लेना (दशवै. 3.6)
8. **अपरिणत-** जो पूर्ण रूप से शस्त्र परिणत न हुआ हो, उसे लेना (दशवै. 5.2.23)
9. **लिप्त-** जिस वस्तु को लेने से हाथ या पात्र में लेप लगे अथवा तुरन्त की लीपी गीली भूमि को लाँघ कर लेना (दशवै. 5.1.21)
10. **छर्दित-** जिसके छींटे नीचे गिरते हों ऐसी वस्तु को टपकाते हुए देने पर लेना (प्र. व्या. 2.5)

उपर्युक्त दस दोष टालकर साधु-साध्वी वस्तु को ग्रहण करे। ये दस दोष साधु और गृहस्थ दोनों से लगते हैं।

(3) परिभोगैषणाः- साधु द्वारा वस्तु का उपभोग करते समय जो दोष लगते हैं उन्हें टालकर आहारादि को ग्रहण करना परिभोगैषणा है। इसका दूसरा नाम 'ग्रासैषणा' भी है। नीचे लिखे पाँच दोष जो साधु से लगते हैं, 'परिभोगैषणा'' के दोष हैंः-

1. **संयोजना दोष-** स्वाद बढ़ाने के लिए एक वस्तु में दूसरी वस्तु मिलाना,जैसे दूध में शक्कर (भग.7.1)
2. **अप्रमाण दोष-** प्रमाण से अधिक भोजन (आहार) करना (भग. 7.1)
3. **अंगार दोष-** निर्दोष आहार को भी लोलुपता सहित खाना, रस-गृद्ध होना। लोलुपता संयम में आग लगाने वाली होती है। (भग.7.1)
4. **धूम दोष-** स्वाद रहित, अरुचिकर आहार की या दाता की निंदा करते हुए खाना। (भग. 7.1)
5. **अकारण दोष-** आहार करने के छह कारण उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 26, गाथा 33 में बताये हैं। उनमें से कोई भी कारण नहीं होने पर भी स्वाद अथवा पुष्टि आदि के लिए आहार (भोजन) करना। ज्ञानादि की आराधना के लिए आहार करना विहित है। लोलुपता या शारीरिक बलवृद्धि हेतु नहीं। (ज्ञाता.2)

उद्गम के 16, उत्पादन के 16, ग्रहणैषणा के 10, और परिभोगैषणा (मांडले) के 5 यों कुल 47 दोष हुए। इन सैंतालीस दोषों को टालकर जो शुद्ध आहार करते हैं, वे साधु-साध्वी जिनेश्वर भगवंत की आज्ञा के आराधक होते हैं।

विशेष- एषणा समिति के सभी मूल भावों एवं विशेषताओं के अनुसार स्तोक रचना कर महापुरुषों ने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

बोलों के रूप में एषणा समिति का स्वरूप प्रकट करते हुए उसका सार संक्षेप में इस प्रकार रखा है:-

एषणा समिति- शुद्ध एषणीय 42 दोष टालकर आहार-पानी ग्रहण करे, 5 दोष टालकर भोगवे। एषणा समिति को 4 बोलों से पहचानें। (1) द्रव्य से, (2) क्षेत्र से, (3) काल से और (4) भाव से।

(1) द्रव्य से- एषणा के तीन प्रकार- (1) गवेषणा (ग्रहण करने से पहले) 16 उद्गम के, 16 उत्पादन के 32 दोष टालकर शुद्ध आहार की गवेषणा करे। (2) ग्रहणैषणा (ग्रहण करते समय)- ग्रहणैषणा के 10+गवेषणा के 32=42 दोष टालकर लेवे। (3) परिभोगैषणा/ग्रासैषणा (भोगते समय के)- 5 दोष+42=47 दोष टालकर भोगवे।

(2) क्षेत्र से- दो कोस उपरान्त ले जाकर आहार नहीं भोगे।

(3) काल से- पहले प्रहर का आहार चौथे प्रहर में नहीं भोगे।

(4) भाव से- राग-द्वेष रहित व मांडला के 5 दोष टाल कर भोगे।

उक्त चार बोलों के माध्यम से एषणा समिति के स्वरूप का परिचय संक्षेप में ज्ञात होता है।

आहारादि के उद्गम आदि 47 दोष प्रसिद्ध हैं। पूर्वाचार्यों ने 'पिण्ड निर्युक्ति' आदि अनेक ग्रंथों में इनका एक ही स्थान पर वर्णन किया है। ये दोष आगमों के मूल पाठों में भी वर्णित हैं, किन्तु एक स्थान पर सभी उपलब्ध नहीं होते। निर्युक्ति आदि ग्रंथों में एक साथ दिये हुए होने से एषणा के 47 दोष ही प्रचलित हैं, जो सभी साधकों व श्रावकों के अधिक परिचय में हैं। किन्तु उक्त 47 दोषों के अतिरिक्त भी आगमों में अन्य कई दोषों का वर्णन है जिन्हें ज्ञानी महापुरुषों ने उनके नामों को संक्षिप्त विवेचन के साथ आगमिक संदर्भ में अंकित करने की कृपा की है। इनकी संख्या लगभग 64 है।

विस्तार भय से यहाँ केवल सान्दर्भिक आगम-सूत्रों के अंतर्गत समाविष्ट दोषों की नामावली के अंकन की ही भावना है, उनका अर्थ-विवेचन एवं संदर्भ साहित्य के अध्ययन, शतक, उद्देशक, चूलिका, गाथा इत्यादि का परिचय नहीं। केवल नामों का अंकन, मात्र नाम-परिचय की दृष्टि से प्रस्तुत है।

दशवैकालिक सूत्र के अंतर्गत समाविष्ट दोषों के नाम:-

1. दानार्थ	2. पुण्यार्ण,	3. वनीपक,
4. श्रमणार्थ	5. नियाग,	6. शय्यातर पिण्ड,
7. राज पिण्ड,	8. किमिच्छक,	9. संघट्ट
10. बहुउज्झिए,	11. पूर्व कर्म,	12. पश्चात् कर्म,
13. नशीली वस्तु,	14. एलग,	15. श्वान,
16. दारग,	17. वच्छक,	18. अवगाहक,
19. चलकर,	20. गुर्विणी,	21. स्तनपायी,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

22. नीचाद्वार, 23. अन्धकार, 24. घृणित कुल (निशीथ में भी)
25. परिसाडिय, 26. बरसते पानी, धुँअर,मच्छर, पतंग अधिक उड़ने, आँधी,
27. वेश्या-निवास के निकट भिक्षार्थ जाना।

निशीथ सूत्रांतर्गत नामः-

1. नीच कुल, 2. वर्जित घर, 3. अविश्वसनीय घर
4. पुकारना, 5. पासत्थभक्त, 6. अटवी भक्त
7. घृणित कुल (दशवै.में भी), 8. अग्रपिण्ड, 9. सागारिक निश्राय
10. अन्य तीर्थिक भक्त, 11. अखण्ड

3. भगवती सूत्रांतर्गत नामः-

1. क्षेत्रातिक्रान्त, 2. कालातिक्रान्त, 3. मार्गातिक्रान्त, 4. प्रमाणातिक्रान्त
5. कन्तार भक्त, 6. दुर्भिक्ष भक्त, 7. बद्दली भक्त, 8. ग्लान भक्त

4. आचारांग सूत्रांतर्गत समाविष्ट नामः-

1. संखड़ी, 2. अन्तरायक, 3. फुमेज्ज, वीएज्ज।

5. प्रश्नव्याकरण सूत्रांतर्गत नामः-

1. रइयग, 2. पर्यवजात, 3. मौखर्य, 4. स्वयं ग्रहण, 5. रक्खणा,
6. सासणा, 7. निन्दना, 8. तर्जना, 9.गारव, 10. मित्रता,
11. प्रार्थना, 12. सेवा, 13. करुणा।

6. उत्तराध्ययन सूत्रांतर्गत समाविष्ट दोषः- (1) ज्ञाति पिण्ड

7. ठाणांग सूत्रांतर्गत दोषों के नामः- (1) पाहुण भक्त

इस प्रकार के और भी कई प्रकार के निषेधक नियम आगमों में हैं। उपर्युक्त नियमों को भावपूर्वक उपयोग सहित पालने वाले, श्रद्धेय श्रमण-श्रमणी वर्ग का जीवन उच्चकोटि का और पवित्र होता है। शासनेश प्रभु महावीर ने निर्ग्रन्थ मुनिराजों को निम्नांकित पाँच प्रकार का आहार ग्रहण कर, साधना को उत्कृष्ट बनाने की प्रेरणा प्रदान की हैः-

1. अरसाहार, 2. विरसाहार, 3. अन्ताहार, 4. प्रान्ताहार और 5. रुक्षाहार।

एषणीय अन्य वस्तुएँः-

श्रमण-जीवन में आहार, पानी और स्थान के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी उपयोगी होती हैं जो सद्गृहस्थों के घरों से प्राप्त की जाती हैं, यथाः- 1. रजोहरण, 2. मुख-वस्त्रिका, 3. चोल पट्टक, 4. पात्र, 5. वस्त्र, 6. आसन, 7. कम्बल, 8. पाद पोंछन, 9. शय्या, 10. संस्तारक, 11. पीठ, 12. फलक, 13. पात्र बंध, 14. पात्र स्थापन, 15. पात्र केसरिका, 16. पटल, 17. रजस्त्राण, 18.

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गोच्छक और 19. दण्डक आदि। (प्रश्न व्या. द्वि. श्रुत. अध्य.3 तथा 5 में)। इनमें प्रथम दो वस्तुएँ तो सभी साधु-साध्वियों की पहचान होती हैं, साथ ही स्थावर और त्रसकाय जीवों का संयम भी पलता है। प्रथम महाव्रत के निर्दोष रूप से पालने के साथ समितियों का पालन भी भली प्रकार से होता है।

एषणीय वस्तुएँ और भी हैं, जैसे लिखने-पढ़ने के साधनों में लेखन-सामग्री, पुस्तकें आदि। आवश्यकता पड़ने पर औषधि, कैंची, सूई, धागा, चाकू आदि भी लेने पड़ते हैं। कई उपकरण काम हो जाने पर लौटाने के उद्देश्य से भी लिये जाते हैं, जैसे मकान, पाट, बाजोट, पुस्तकें, सूई, कैंची, चाकू, पराल आदि। इनको उपधि के नाम से जाना जाता है। उपधि दो प्रकार की होती है- (1) औघिक उपधि और, (2) औपग्रहिक उपधि। इनके नाम व परिचय पूर्व पंक्तियों में वर्णित विषय-सामग्री से स्पष्ट हो जाते हैं। उपकरण (साधन/वस्तु) आवश्यकता के अनुसार लिये व रखे जाते हैं। अधिक रखना स्वयं को परिग्रही बनाना है। कम से कम उपकरण रखने वाले श्रमण लघुभूत होते हैं। उनका चारित्र निर्मल होता है। जितनी कम उपधि होगी, स्वाध्याय की अधिकता और इच्छा की कमी होगी। (उत्तरा.अध्ययन 29 गाथा-34,42) अतः आवश्यकता को सीमित रखकर कम लेना संयम-वृद्धि का कारण एवं अधिक लेना संयम में दूषण है।

उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन 24 की 27 गाथाओं में 27 गुणों से युक्त श्रमण-श्रमणी की पूर्ण साधुचर्या की आधार-शिला अहिंसा और उस अहिंसा को साधने वाली प्रवृत्ति 'एषणा समिति' का सांगोपांग वर्णन किया गया है। पाँच समितियों में 'एषणा समिति' का सम्यक् परिपालन संयम-जीवन में चार चाँद लगाता है। साधक की साधना महाव्रतों से सधती है और महाव्रतों का मूलाधार अहिंसा है। अतः महाव्रतों अथवा अहिंसा की सुरक्षा के लिए निर्दिष्ट साधनों में अष्ट प्रवचनमाता महत्त्वपूर्ण साधन है। एषणा समिति भी इस प्रकार अहिंसा एवं संयम की रक्षक है।

-सेवानिवृत्त व्याख्याता, खिड़की दरवाजा, अलीगढ़, जिला-टोंक (राज.)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org